भारतीय राजनीति और सांप्रदायिकता

डॉ. रमनदीप कौर
अस्सिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, गुरु अंगद देव महाविद्यालय, खडूर साहिब, तरनतारन,पंजाब।

Received: May 07, 2019 Accepted: June 15, 2019

ABSTRACT: *भारतीय राष्ट्र के समक्ष सांप्रदायिकता बहुत बड़ी समस्या है। इस शोध पत्र में भारत के विभाजन के बाद हिन्दू–मुस्लिम सांप्रदायिकता के उद्भव और विकास के विभिन्न पहलुओं को विश्लेषित किया गया है, जिसका एक मुख्य पहलु चुनावी राजनीति है। शुरु से ही राजनीतिक दलों ने विभिन्न सामाजिक और धार्मिक समूहों के बीच सांप्रदायिकता भड़काने के लिए मुख्य भूमिका निभाई है। उन्होंने सफलतापूर्वक चुनाव जीतने के लिए बहुत चलाकी से जनता की राय का विभाजन किया है। निसंदेह, दोनों समूहों के बीच बहुत से धार्मिक और संस्कृतिक मतभेद रहे हैं, लेकिन राजनीतिक विशिष्ट वर्ग के द्वारा समय–समय पर धार्मिक संगठनों की सहायता से और भी अधिक मतभेद पैदा किये गए हैं। इसलिए संप्रदायिकता की समस्या धार्मिक ना होकर एक राजनीतिक समस्या है और यह हमारे समाज के लिए अत्यंत गंभीर है। इसे खत्म करने के लिए प्रेरक या शिक्षाप्रद और दंडात्मक, दोहरा दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। यदि हम एक राष्ट्र के रूप में जीवित रहते हुए विश्व शक्ति बनना चाहते हैं तो सांप्रदायिकता के अजगर को खत्म करने के लिए तरीके और साधन जुटाने ही होंगे, नहीं तो दंगे होते रहेंगे, लोग मरते रहेंगे, खून बहता रहेगा और इन सब की कीमत पर सरकारें बदलती रहेंगी, नकारात्मक राजनीति जिन्दा रहेगी और जनता मरती रहेगी।*

Key Words:

सांप्रदायिकता एक भंयकर रोग है, जो कि भारतीय समाज को एक लंबे समय से पीड़ित कर रहा है। यहां तक कि स्वतन्त्रता के कई दशकों के बाद भी इससे छुटकारा नहीं मिल रहा और यह और भी घातक बनता जा रहा है। स्वतन्त्रता से पहले यह माना जाता था कि सांप्रदायिक तनाव ब्रिटिश सरकार की 'फूट डालो और शासन करो' की नीति का परिणाम है। लेकिन यह समस्या आज़ादी के बाद और भी ज्यादा भयानक हो गई थी। सांप्रदायिकता की इस प्रकार वृद्धि देश की एकता, अखंडता और लोकतांत्रिक प्रणाली के लिए बहुत खतरनाक है।[1]

स्वतंत्र भारत में राजनीतिज्ञों ने दोनों समूहों की धार्मिक भावनाओं को राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयोग किया, जैसे कि आज़ादी के पहले ब्रिटिश शासकों द्वारा किया गया था।[2]

आज़ादी के बाद से भारत में अनेक धार्मिक समुदाय और जातीय समूह शामिल हैं। भारत में मुस्लिमों की आबादी 17 करोड़ मिलीयन से भी अधिक है[3], जो कि आगे विभिन्न सांप्रदायों में विभाजित है। ज़ाहिर है कि किसी भी बहुलवादी राज्य का गठन, धर्म क आधार पर नहीं किया जा सकता। भारतीय संविधान के संस्थापकों ने भारत को धर्मनिरपेक्ष बनाने के लिए संविधान की प्रस्तावना में भारत के आदर्श को इस रूप से परिभाषित किया।

हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने का वचन लेते हैं और सभी नागरिकों के लिए, समाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय; विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था और पूजा की स्वतन्त्रता; अवसर और स्थिति की समानता; प्राप्त करने और उनके बीच भाईचारा बड़ाने और प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की ऐकता और अखंडता के लिए प्रतिज्ञा लेते हैं।[4]

भारत के आदर्श स्वरूप में हमारे संविधान की प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता और सभी नागरिकों की स्वतन्त्रता और समानता को इस रूप में परिभाषित किया गया है। लेकिन वास्तविकता में बहुत सारी विसंगतियां और विरोधाभास है। देखने को तो भारतीय संविधान और राज्य धर्मनिरपेक्ष है और यहां पर कोई भेदभाव नहीं। लेकिन समाजिक विशेषतायों, सांप्रदायिकता, शासन की गलत नीतियों, नौकरशाही की गलत व्यवस्था ने, संविधानिक मुल्यों के उद्देश्य को हरा दिया है।

अगस्त 1947 से 1960 के समय के दौरान, मुस्लिम समुदाय ने स्वंय को एक राष्ट्रीय अल्पसंख्यक के रूप में पहचाना। इसी समय के दौरान ही, हिन्दू समुदाय एक शक्तिशाली और प्रबल राजनीतिक संगठन के रूप में उभरा। हिन्दू नेतृत्व ने, राष्ट्रीय नेतृत्व के वर्ग के साथ मिलकर, भारत में एक सामंती और धार्मिक राज्य की स्थापना की दिशा में प्रयास आरंम्भ कर दिये, ताकि हिन्दू धर्म को सुरक्षा प्रदान की जा सके।[5]

आज़ादी के बाद सबसे पहला और प्रमुख सांप्रदायिक दंगा 1961 में जबलपुर में हुआ, जो कि दो बीड़ी निर्माताओं, एक मुस्लिम और दूसरा हिन्दू के बीच तीव्र आर्थिक प्रतिस्पर्धा के कारण हुआ, जो एक ही शहर में काम कर रहे थे।[6] लेकिन हिन्दी प्रेस ने भड़काऊ भूमिका निभाते हुए कहा कि यह सब एक हिन्दू बीड़ी निर्माता की बेटी और मुस्लिम बीड़ी निर्माता के बेटे के प्यार संबंध के साथ शुरू हुआ था, प्रेस ने एक बलात्कार के मामले के रूप में भी इसे प्रचारित किया। कई मुस्लिम इन दंगों में मारे गए और बहुत से सशस्त्र पुलिस से आंतकित थे। इसके बाद 27 दिसंबर 1963, को कश्मीर में हजरतबल मस्ज़िद के पैगम्बर महोम्मद के पवित्र अवशेष की चोरी, खुलना (जो अब बांगलादेश में है) में गंभीर दंगों का कारण बनी, यहां से कई हिन्दू परिवार भारत भाग गए। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में, 1964 में रांची, राउरकेला, जमशेदपुर और कलकत्ता में गंभीर दंगे हुए। बड़ी संख्या में लोग मारे गए।[7]

सांप्रदायिक गड़बड़ी की बुनियादी जड़ें गहराई से समाजिक–मनौवैज्ञानिक– सांस्कृतिक और धार्मिक चेतना में गड़ी हुई थी, जो कि राजनीतिक नेताओं के द्वारा अपने स्वंय के लाभों के रूप में प्रकट हो रही थी।[8]इन सब सांप्रदायिक गतिविधियों के चलते, मुस्लिम राजनीतिक वर्ग ने भी अपने सांप्रदाय को संगठित करना शुरु कर दिया। मुस्लिम हितों की रक्षा करने के लिए, उनके बहुत से राजनीतिक, धार्मिक और समाजिक संगठन कारवाई में आए। जैसे कि 'ज़मात–ऐ–अल–उलेमा–ए' हिंद, जिसने मुस्लिम पर्सनल लॉ की रक्षा के लिए काम किया और इससे राज्य द्वारा किये जाने वाले हस्तक्षेप का विरोध किया। इसके अलावा, 'ज़मात–ऐ–इस्लामी' जिसने धार्मिक वातावरण से निपटने के लिए और विशेष रूप से भारती मुस्लिमों के लिए 'शरीयत' को सुरक्षित करने के लिए, सांप्रदायिक एजेंडे को अपनाया। एक और महत्वपूर्ण संगठन, जो कि 'अंजुमून–ए–तारीखी–ए–उर्दू' के नाम से उभरा और इसने उर्दू भाषा का समर्थन किया। एस.एम. फरोदी और सयद मोहम्मद, जो दोनों 1964 में नेहरू के मंत्रिमंडल में मंत्रि थे, ने 'मजलिस–ए–मशरत' का संगठन किया, जिसका मुख्य उद्देश्य अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के मुस्लिम स्वरूप को सुरक्षित करना और संसद में पार्याप्त मुस्लिम प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना था। इस संगठन को, मुस्लिमों द्वारा एक और पाकिस्तान बनाने के प्रयास के रूप में देखा गया था और इसका विरोध किया गयइं दूसरी तरफ जनसंघ ने पाकिस्तान और मुस्लिमों के विरूद्ध सख्त नीति अपनाई थी और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आर.एस.एस.) द्वारा पूरा समर्थन मिलने की वजह से, भारतीय जनसघ (बी.जे.एस.) को मुस्लिम विरोधी पार्टी के रूप में माना गया। यह विरोधता अधिक प्रबल हुई, जब पार्टी ने सभी भारतीयों के लिए, 'समान नागरिक संहिता' के लिए मांग की। मुस्लिमों ने इस माँग के खिलाफ गंभीर कदम उठाते हुए 1960 में 'मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड' का आयोजन किया जिसका लक्ष्य मुस्लिम शरीयत कानून की रक्षा करना था। कांग्रेस सरकार ने मुसलमानों को आश्वासन दिया कि उनके पर्सनल लॉ में हस्तक्षेप नहीं होगा। 'बी.जे.एस.' ने इसको कांग्रेस की रणनीति कहा और नेहरूवादी धर्मनिरपेक्षता को 'नकली धर्म निरपेक्षता' कहा क्योंकि यह बहुसंख्यक धर्म की उपेक्षा करते हुए किसी एक धर्म के लोगों के पक्ष में है।[9] भारतीय जनसंघ ने कहा कि मुसलमानों के लिए विशेष पक्ष दिखाने की जरूरत नहीं है क्योंकि पाकिस्तान में रह रहे हिन्दुओं को भी विशेष अधिकार प्राप्त नहीं। इसके साथ ही भारतीय मुस्लिमों की वफादारी पर भी संदेह जताया गया।

रणनीति के चलते, लाल बहादुर शस्त्री के प्रधानमंत्री पद के दौरान कांग्रेस के नेताओं ने जनसंघ के नेताओं के साथ मंच सांझा किया था। गिरीश माथुर बताते हैं कि पाकिस्तान के साथ 1965 के युद्ध के दौरान, ''दिल्ली में सिविल डिफेन्स लगभग जनसंघ को सौंप दिया, बावजूद इंदिरा गांधी सहित कई प्रगतीशील कांग्रसियों के विरोध के।'' माथुर ने यह आरोप भी लगाया के बडे पैमाने पर मुस्लमानों को गिरफतार किया गया और सरकारी नौकरी करने वाले मुस्लिमों का उत्पीड़न किया गया था।[10] जब मुसलमानों ने 1962 में कांग्रेस का विरोध किया तो कांग्रेस ने उन्हें परेशान किया और जब उन्होंने कांग्रेस का समर्थन किया तो जनसंघ और शिवसेना द्वारा उन्हें परेशान किया गया। इस प्रकार मुसलमानों के वोट बैंक के लिए उन्हें, समय–समय पर विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा परेशान किया जाता रहा है। दीपांकर गुप्ता ने लिखा है कि 1960 के बाद और 1970 के पहले के समय के दौरान शिवसेना, कांग्रेस की एक महत्वपूर्ण सहयोगी थी।[11] यह सांप्रदायिक तत्वों के साथ समझौता करने की नीति लगातार जारी रही।[12] जैसे कि जनता पार्टी विभिन्न संगठनों का एक समूह था और इसके बहुत से सदस्य 'आर.एस.एस.' के सदस्य है। इसका जनसंघ और 'ज़मात–ए–इस्लामी' दोनों के द्वारा समर्थन किया गया था। 1977 के दौरान जनसंघ की केंद्र में सत्ता में भागीदारी थी। इसी समय के दौरान धर्मनिरपेक्षता के संबंध में पाठ्य पुस्तक विवाद भी चला।[13] एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात है कि 1977 के चुनावों में जामा मस्जिद दिल्ली के शाही इमाम ने जनता पार्टी के दिग्गजों जैसे कि अटल बिहारी वाजपाई के साथ राजनीतिक मंच सांझा किया।[14]

प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के द्वारा हिन्दू कार्ड का उपयोग सांप्रदायिकता का एक और अद्भुत दृश्य था। जब उसने 1975 में आपातकाल की घोषणा की तो देश में कोई दंगा नहीं हुआ। पर मुस्लिम समुदाय ने आरोप लगाया कि इस समय के दौरान इंदिरा गांधी के बेटे संजय गांधी के परिवार नियोजन अभियान के हिस्से के रूप में जबरदस्ती मजबूर कर पुरुष नसबंदी अपरेशनों के रूप में, उन्होंने बहुत कुछ सहा है। इसी कारण मुसलमानों ने आपातकाल के बाद के दौर में अपनी वफादारी का तबादला, कांग्रेस पार्टी से, नवगठित जनता पार्टी के पक्ष में किया।[15] जनसंघ ने भी जनता पार्टी के साथ हाथ से हाथ मिलाया। जब जनता पार्टी ने जनता शासन का अधिग्रहण किया, तब जामा मस्जिद के शाही इमाम एक लोकप्रिय मुस्लिम के रूप में उभरे। कई हिन्दु इस तथ्य को पसंद नहीं करते थे, तो जनसंघ के नेताओं ने इस तथ्य का फायदा उठाते हुए, हिन्दुओं की भावनाओं को भड़काया। सांप्रदायिक समस्या एक बार फिर से जाग उठी और जमशेदपुर, अलीगढ़ और वाराणसी में दंगे हुए और इन दंगों में मुसलमानों पर बहुत अत्याचार हुए।

एक पार्टी के प्रभुत्व की समाप्ति के बाद, जिसमें के कांग्रेस पार्टी केन्द्र और अधिकांश राज्यों में सत्ता में थी, ने सबसे पहले अल्पसंख्यकों में आधार खोजन का प्रयास किया। 1980 के बाद, हिन्दूओं में समुदायिक चेतना के उदय के साथ, अपना वोट बैंक सुरक्षित करने के लिए हिन्दू कार्ड का प्रयोग किया। इसके चलते 1984 में पंजाब में सेना की कारवाई के तुरंत बाद, उसने खलेआम कहा कि 'हिन्दू धर्म संकट में है और हिन्दू संस्कृति को सिख, मुस्लिम और दूसरों के हमले से बचाने की जरूरत है।[16]

इंदिरा गांधी ने हिन्दू भावनाओं को जीता और साथ ही अल्पसंख्यकों को लुभाने की भी लगातार कोशिश की। पंजाब में संत भिंडरांवाले का उभरना इसका उदाहरण है। 1984 में इंदिरा गांधी की हत्या, देश भर में खून खराबे और सिख विरोधी दंगों का कारण बनी। शीर्ष–स्तर की भागीदारी का संकेत होते हुए भी लगातार सरकारे अपराधियों को सजा दिलाने में नाकाम रही।[17] इस संबंध में शहाबुदीन के शब्द हैं कि, 'इंदिरा गांधी 'रणनीतिक धर्मनिरपेक्ष थी, जब स्थिति मांग करती थी तो वह चतुराई से सांप्रदायिक हो जाती थी।'[18] 1983 में कर्नाटक और आन्ध्र प्रदेश के चुनावों में कांग्रेस की हार के कारण, श्रीमति गांधी के 'आर.एस.एस.' की ओर दृष्टिकोण में बदलाव आया। उसके और 'आर.एस.एस.' के प्रधान बाला

साहिब के बीच एक सौदा हुआ। सिख तो पहले से ही कांग्रेस के खिलाफ थे, इंदिरा गांधी ने धार्मिक कार्यक्रमों के जरिए वोट बैंक संरक्षण शुरू कर दिया।[19] जैसे कि विहिप के साथ हरिद्वार में भारत माता मंदिर का उद्घाटन किया। राजीव गांधी ने भी अपनी मां के वोट बैंक के दोहरे सिद्धान्त का पालन किया। उसने शाह बानों केस के फैसले के द्वारा मुस्लिम कट्टरपंथियों को खुश करने की कोशिश की और दूसरी तरफ हिन्दूओं द्वारा इसका विरोध करने पर उन्हें खुश करने के लिए 1986 में विवादत बाबरी मस्जिद के ताले खोलने की अनुमति दे दी।[20] उसके शासन के समय, धर्मनिरपेक्षता की तस्वीर काफी बिगड़ गई। यहां तक कि उसने विहिप को अयोध्या में शिलान्यास करने की अनुमति भी दे दी। लेकिन शाहबानों प्रकरण के वर्ष 1986 से, बाबरी मस्जिद विध्वंस के वर्ष 1992 तक, भारतीय जनता पार्टी ने वैचारिक एजेडें को प्रभावित किया। 1989 के चुनावों में कांग्रेस की दोहरी नीति का फायदा भारतीय जनता पार्टी को हुआ। 1989 के चुनावों में भाजपा ने जोरदार रूप से मंदिर मुद्दे के साथ खुद की पहचान बनाई। इस पूरी प्रक्रिया का एक ही प्रभाव पड़ा वह था, सांप्रदायिकता का मजबूत होना।

इस तरह से सांप्रदायिक राजनीति का एक बहुत बड़ा उदाहरण 2002 के गुजरात दंगों के रूप में मिलता है, इन दंगों में हुए नुकसान भी भरपाई भी कभी नहीं हो सकती। दंगों के बाद मुख्यमंत्री ने 'क्रिया–प्रतिक्रिया' के रूप में इन दंगों को उचित बताया। नरेन्द्र मोदी की राज्य सरकार के साथ–साथ अटल बिहारी वाजपाई की केन्द्र सरकार भी स्थिति पर नियंत्रण करने में असफल रही। दंगों के पीड़ितों को आज तक भी न्याय नहीं मिल पाया। दंगे होते रहते हैं, लोग मरते रहते हैं, खून बहता रहता है और इन सब की कीमत पर सरकारें बदलती रहती हैं, राजनीति जिन्दा रहती है, जनता मरती रहती है।

इस तरह हम देखतें हैं कि शुरु से ही राजनीतिक दलों ने विभिन्न समाजिक और धार्मिक समूहों के बीच सांप्रदायिकता भड़काने के लिए एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने सफलतापूर्वक चुनाव जीतने के लिए जनता की राय का विभाजन बहुत ही चलाकी से किया है। भारतीय जनता पार्टी ने हमेशा धार्मिक मुद्दों को उकसाया और इस्तेमाल किया और कांग्रेस ने हमेशा इन मुद्दों को फ्रिकू रंग दिया। आज़ादी के बाद जब हिन्दूओं और मुसलमानों के बीच अलग धार्मिक पहचान विकसित हुई तो राजनीतिक दलों ने इसे राजनीतिक रंग देना शुरु किया। इस सारे वातावरण को आगे दी गई आकृति द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

भारत में विभाजन के बाद सांप्रदायिकता का विकास

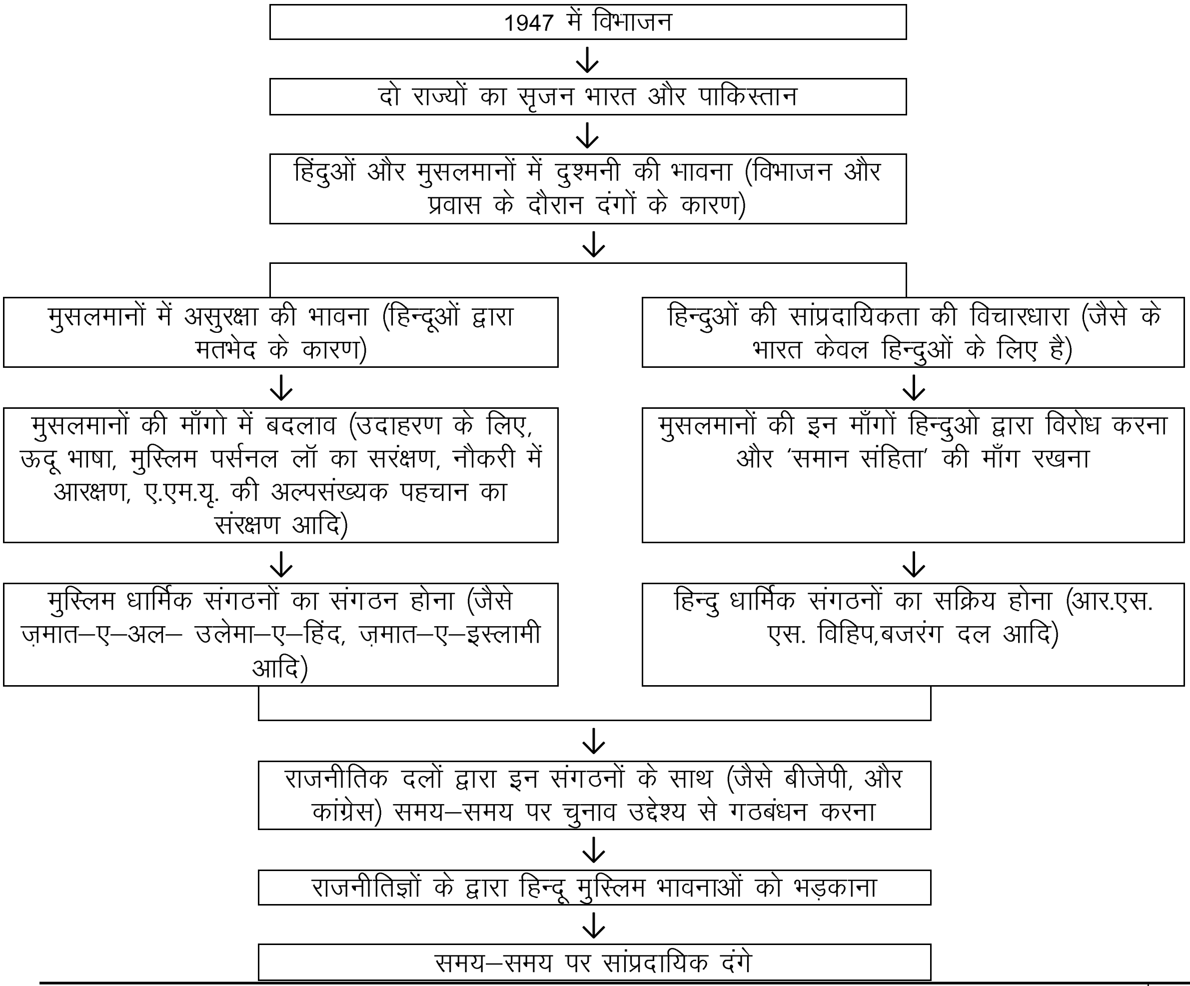

↓

हजारों लोगों की जिन्दगी की कीमत पर, सरकार और शक्ति का एक से दूसरे हाथ में जाना

इस आकृति से पता चलता है कि हिन्दूओं और मुस्लिमों के बीच एक बहुत बड़ी खाई मौजूद है। यह लगातार बढ़ती ही गई है। इसे किसी भी तरह भरा नहीं जा सकता और न ही कभी इसे भरने का प्रयास किया गया है। बल्कि इस अंतराल को राजनीतिज्ञों द्वारा अधिक व्यापक बनाया जाता रहा है। निरसंदेह, दोनों के बीच बहुत से धार्मिक और संस्कृतिक मतभद रहे हैं, लेकिन राजनीतिक विशिष्ट वर्ग के द्वारा समय–समय पर धार्मिक संगठनों की सहायता से और भी ज्यादा अधिक मतभेद पैदा किये गए हैं। भारत में इस तरह के दर्जनों संगठन हैं और लाखों लोग इन संगठनों के सदस्य हैं। लगभग हर वर्ष बहुत से सांप्रदायिक दंगे होते हैं और हर दंगे में आसीम, जान और माल का नुकसान होता है और सामान्य अल्पसंख्यक समुदाय बहुत नुकसान उठाते हैं।[21] इन सब सांप्रदायिक घटनाओं की जड़े चुनावी राजनीति में है। इस प्रकार सांप्रदायिकता की समस्या शुरू ये ही एक धार्मिक समस्या न होकर एक राजनीतिक समस्या है और यह समस्या अत्यंत गंभीर है। इसे खत्म करने के लिए प्रेरक या शिक्षाप्रद और दंडात्मक, दोहरा दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। जिसके अधीन,

- राजनीतिक दलों को लोगों को मतदाताओं के रूप में नहीं, नागरिकों के रूप में देखना चाहिए। लोगों को भी एक दूसरे को, एक ही राष्ट्र से संबंधित मानते हुए सांप्रदायिक सद्भाव को बढ़ावा देना चाहिए।
- कानून के समक्ष समानता, के फैसले को बरकरार रखा जाना चाहिए।
- मीडिया को भी अपनी भूमिका निभाते हुए राष्ट्र की अखंडता और प्रगति के हित में, मानव अधिकार, राष्ट्रीय ऐकता और कानून के समक्ष समानता की अवधारणा का प्रचार करना चाहिए।
- सांप्रदायिक सद्भाव की अवधारणा को, स्कूलों और कालेजों म एक अनिवार्य पाठ्यक्रम बनाया जाना चाहिए।
- इस घृणित समस्या के खिलाफ दंडात्मक उपायों में भी सुधार किया जाना चाहिए क्योंकि कानून की कमज़ोरियों के कारण, अपराधी खुलेआम घूमतें हैं और यहां तक कि सत्ता पर भी काबिज हैं।
- सभी सांप्रदायिक दंगो की सी.बी.आइ द्वारा सुप्रीम कोर्ट की देख–रेख में निश्चित समय में जांच होनी चाहिए और कानून में ऐसे प्रावधान होने चाहिए कि कोई भी अपराधी बच न सके।

दुनिया का इतिहास इस बात का साक्षी है कि यदि एक राष्ट्र, अतीत की भूलों से सबक नहीं लेता तो वह नष्ट हो जाता है। इस पकार यदि हम एक राष्ट्र के रूप में जीवित रहते हुए, विश्व शक्ति बनना चाहते हैं तो सांप्रदायिकता के अजगर को खत्म करने के लिए तरीके और साधन जुटाने ही होंगे।

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

1. [1]जितेन्द्र नारायण, **कम्यूनल राइअट्स इन इन्डिआ,** नई दिल्लीः रावत पब्लिकेशन, 1999, पृ.3.
2. [2] के.के. जोशी, ''दी जेनसिस ऑफ कम्यूनलइज्म'', **दी ट्रिब्यून,** 27 अप्रैल 1987.
3. [3] **पंजाब केसरी**, 26 अगस्त 2015, पृ.2.
4. [4] भारतीय संविधान की प्रस्तावना।
5. [5] प्रथा, एस. घोष, **बी.जे.पी. एण्ड ईवल्यूशन ऑफ हिन्दु नेशनलिज्म**, नई दिल्लीः मनोहर पब्लिकेशन, 1999, पृ.147.
6. [6] असगर अलि एनजिनइअर, **कम्यूनल राइअट्स इन पोस्ट इनडिपेन्डेंट इण्डिया,** मुम्बई : संगम पब्लिकेशन, 1984, पृ.53.
7. [7] वही.
8. [8] ऐ.पी. माहेश्वरी, **कम्यूनलइज्मः ए क्राईसिस ऑफ कानशसनेस,** नई दिल्लीः कनिष्क पबिल्केशन, 2003, पृ. 142.
9. [9] गीता पुरी, **हिंदुत्व पालिटिकस इन इन्डिया,** नई दिल्लीः यूबीएस पब्लिकेशन, 2005, पृ.85.
10. [10] गिरीशी माथुर, ''कम्यूनल वायलेन्स सिन्स इनडिपेन्डेन्स'', इन एस.श्रीवास्तव (संपादित), **इन्डियन डेमोक्रेसी एण्ड कम्यूनलइज्म,** नई दिल्लीः माएत्री कॉलेज, 1987, पृ.18.
11. [11] वही, पृ.18.
12. [12] मोइन्स रजा, ''कम्यूनलइज्मः दी डरेगन से टीथ'' इन, प्रमोद कुमार (संपादित), **टूवारडस अन्डरस्टेन्डइंग कम्यूनलइज्म,** चण्डीगढ़ः सी.आर.आर.आई.डी., 1992,पृ.129.
13. [13] एल.आई. रडओल्फ एण्ड सुसेन.एच.रडओलफ, ''रीथिन्कईग सेक्युलरिज्मः जेनसिस एण्ड इम्लीकेशन्स ऑफ टिक्सट बुक कन्टरोव्रसी 1977–79, इन एल.काई रडओलफ (संपादित) **कलचरल पॉलिसी इन इन्डिया,** दिल्लीः चाणकिया पब्लिकेशन्स, 1984, पृ.13–14.
14. [14] साधना शर्मा, **स्टेट पालिटिक्स इन इन्डिया,** नई दिल्लीः मित्तल पब्लिकेशन्स, 1995, पृ.50.
15. [15]एस.बी.दीक्षित, ''कम्यूनल राईअटस एण्ड टेन्शन्सः कासस एण्ड रेमीडीस,'' इन राम जी लाल (संपादित), **कम्यूनल प्रावलम इन इन्डिया**, दिल्लीः के.पी.एस. पब्लिकेशन्स, 1988, पृ.73.
16. [16] रजनी कोठारी, **स्टेट अगेंस्ट डेमोक्रेसी,** दिल्लीः अजंता पब्लिकेशन, 1988, पृ.247.

17. [17] **दी रिपोट ऑफ सिटिजन्स कमीशन,** 31 अक्टूबर टू 4 नवम्बर 1984, दिल्लीः सिटिजन्स कमीशन, पृ.32.
18. [18] सैयद शहाबुद्दीन, ''डार्कनेस गेदर ऑन दी होरीजन'', **इल्यूसटेटड वीकली ऑफ इन्डिया,**7 मई 1986, पृ.6.
19. [19] मोइन शाकिर, ''राईस ऑफ फंडामेंटलइज्म, इन लाल, नं.27, पृ.57.
20. [20] **टाईमस आफ इन्डिया**, 4 नवम्बर, 1989.
21. [21] एन.एल., गुप्ता, **कम्यूनल राइअटस इन इन्डिया,** नई दिल्लीः ज्ञान पब्लिकेशन, 2000.